भारतीय अर्थव्यवस्था : पुनरीक्षण व भविष्य*

या. वे. रेड्डी

ढाका के महानगरीय वाणिज्य व औद्योगिक मंडल में आज आपको संबोधित करने मुझे निमंत्रित कर आपने मेरा सम्मान किया है। हमें भारतीय रिज़र्व बैंक में हाल ही में आप के प्रतिनिधि मंडल से विचार विमर्श करने का अवसर मिला था। उस अवसर पर मैंने सिद्धान्ततः आप की इस सभा को संबोधित करने का निमंत्रण स्वीकार किया था। मैं अपने आश्वासन को सहर्ष पूरा कर रहा हूँ।

तीन दशकों से अधिक समय से बंगलादेश के कई विख्यात सरकारी अधिकारियों से जुड़े रहने का सम्मान मुझे मिला है। उनमें से श्री सैयदुज्जामन व श्री घोलाम किबरिया, जो बंगलादेश सरकार के भूतपूर्व वित्त सचिव थे, उल्लेखनीय हैं। वे आज भी मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। मुझे डॉ. फ़करुद्दीन अहमद से, जब वे बंगलादेश बैंक के गवर्नर थे, और वर्तमान गवर्नर डॉ. सलेहुद्दीन अहमद - जो लघु-वित्त विषय के जानेमाने विशेषज्ञ हैं- के साथ और अन्य मनीषियों के साथ भी निकट से कार्य करने का सौभाग्य मिला था।

बंगला देश की अर्थव्यवस्था की मुझे गहन और घनिष्ट रूप से अच्छी जानकारी है। यह उस समय से है, जब विश्व बैंक में 1978 से 1983 वर्षों के दौरान कार्यकारी अध्यक्षीय पद पर मैं था, तथा हाल ही में 2002-03 में जब मैं आई एम एफ़ के बोर्ड का कार्यकारी अध्यक्ष था। साथ ही, 1996 से 2002 के दौरान रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर के पद से और 2003 से गवर्नर के पद से मुझे बंगला देश बैंक के साथ आपसी विश्वास व ज्ञानपूर्वक सार्क वित्तीय समूह व एशियाई समाशोधन यूनियन (एसीयू) आदि अनेक मंचों पर कार्य करने का सौभाग्य मिला था। वस्तुतः मैं एसीयू की वार्षिक बैठक में भाग लेने ढाका आया। बंगलादेश बैंक के डॉ. सालेहुद्दीन अहमद अब इसके अध्यक्ष हैं।

* 17 मई 2007 को भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. या. वे रेड्डी द्वारा ढाका स्थित महानगरीय वाणिज्य व औद्योगिक मंडल के मंडल-भवन, 122-124, मोती झील, सीए, ढाका, बंगला देश में दिया गया भाषण।

स्वैच्छिक और स्वार्थ रहित सेवा, गरीबी निवारण व हर नागरिक को उचित निजी गौरव को लौटाने में, यह नारा कि 'अधिकार के रूप में ऋण' कितना सफल हो सकता है, इसे आपने विश्व समुदाय को प्रमाणित कर दिया है। यह आप के देश की महत्वपूर्ण देन है। रिज़र्व बैंक के हम लोग प्रोफ़ेसर मुहम्मद यूनुस के आभारी हैं कि उन्होंने हमारे यहाँ आने का और हमें संबोधित करने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। हमारे बोर्ड, अधिकारी व स्टाफ़ उनके आदर्श और बड़े उत्साह व उच्चतम सद्भाव के साथ किये गये उनके संबोधन से उत्प्रेरित हुए हैं।

मुंबई में हमारी हाल की मुलाकात में श्रीमान अध्यक्ष महोदय की इस बात से सहमत था कि मैं भारतीय अर्थ-व्यवस्था के कुछ पहलुओं पर आपसे विचार-विमर्श करूँगा। ये विचार पिछले कुछ समय की अल्पकालीन संभावना और आगे की यात्रा से संबंधित होंगे।

इसके पहले मैं श्रीमान अध्यक्ष द्वारा उनके स्वागत भाषण में की गयी कुछ टिप्पणियों का उत्तर देना चाहूँगा। इस अवसर पर आपने अपने विचारों को अत्यधिक व्यावसायिक रूप से संजोया है। ढाका में मेरे आते ही आपने अपने प्रस्तावित भाषण की प्रति मुझे भिजवायी, जो बहुत प्रभावशाली और मेरे लिए सुखद आश्चर्य की थी। इसलिए यह मेरा व्यावहारिक कर्तव्य बनता है कि आपके उठाये गये मुद्दों में विशेष कर एसीयू व सार्क-वित्तीय समूह के संबंध में अपना मत प्रकट करूँ।

सार्क वित्त व एसीयू : कुछ पहलू

श्रीमान अध्यक्ष महोदय, आपने आर्थिक नीति पर बहुत महत्वपूर्ण, वास्तव में उल्लेखनीय सामान्य चर्चा की थी, जिस पर हमें विचार-विमर्श करना होगा। मैं आप के संबोधन के दो वाक्यों का संदर्भ देना चाहूँगा :

''श्रीमान गवर्नर जी, यह हमारी राय है कि एक दो देशों को छोड़कर दक्षिण एशियाई देशों की आर्थिक नीतियाँ अभी भी विकास-प्रक्रिया को पूर्ण रूप से प्रोत्साहित करने या बढ़ावा देने से रह गयी हैं।''

तथा

''वैसी साधनाओं में आर्थिक नीतियाँ सीमित रूप से सहायक हैं।''

हमारा विश्वास है कि दक्षिण एशिया में आर्थिक नीतियाँ तीन प्रकार से सहायक होती हैं : पहला दामों को स्थिर रखने से, दूसरा वित्तीय स्थिरता से और तीसरा कुशल विकास प्रक्रिया के लिए वित्तीय साधनों को उपलब्ध कराने से। आर्थिक नीतियाँ विकास प्रक्रिया में उल्लेखनीय योगदान दिया करती हैं, पर उसे पूरा महत्व नहीं दिया गया है। उत्पाद और रोज़गार के बढ़ते समय संतुष्टि होती है और जब वह टल जाता है तब निराशा होती है। अस्थिरता होते समय बहुत दुख होता है, पर सतत स्थिरता के - याने अस्थिरता के नहीं होने के - लाभों को अधिकतर इसलिए अनदेखा किया जाता है कि वे अवश्यंभावी हैं। कभी स्थिरता को सुनिश्चित करने के मुद्रा प्राधिकारियों के प्रयास अर्थ-व्यवस्था के कुछ खंड़ों पर कुछ समय के लिए भार डालेगा। परन्तु जनसंख्या के बड़े भाग और बढ़ोत्तरी में स्थिरता से उन उपायों की वास्तविक व्यापक देन का सीधा अनुभव नहीं होता। उदाहरणार्थ निश्चित रूप से यह दावा किया जा सकता है कि केन्द्रीय बैंकों द्वारा मौद्रिक, वित्तीय और विदेशी क्षेत्रीय वातावरण में किये गये समर्थ उपायों से ही पिछले पाँच सालों में दक्षिण एशियाई अर्थव्यवस्थाएं बड़ी आर्थिक साधनाएँ कर सकी थीं।

अति विशेष रूप से भारत का और मेरा मानना है कि अधिकतर दक्षिण एशियाई देशों के मामले में हमें

बढ़ोत्तरी व स्थिरता लाने का ही लोक-आदेश मिला है। हमें इन पर हावी होनेवाला अन्य कोई भी लक्ष्य, जैसे मुद्रा-स्फीति का लक्ष्यांक, नहीं है। परन्तु संदर्भ के अनुसार समय-समय पर नीति से संबंधित ज़ोर बदलता रहता है। आपको मैं एक उदाहरण देना चाहूँगा। कुछ साल पहले, बैंक ऋण के विस्तार को भारतीय रिज़र्व बैंक प्रोत्साहित कर रहा था। पर अब कुछ समय से हम वैसे विस्तार को कम करना चाहते हैं।

श्रीमान अध्यक्ष महोदय, आप दक्षिण एशिया में अधिक मौद्रिक सहयोग दिये जाने के प्रबल समर्थक थे। मैं मानता हूँ कि दक्षिण एशियाई अर्थ-व्यवस्थाओं में निकट मौद्रिक संयोजन होते हैं। इसलिए आर्थिक नीतियाँ अधिक सुसंगत होनी चाहिए। स्टाफ़ और सूचना के आदान-प्रदान करना उपयोगी हो सकता है। इसे अच्छी तरह समझा गया है और मेरी आशा है कि सार्क-वित्तीय समूह के सदस्य संबंधित वाणिज्य और औद्योगिक मंडलों द्वारा दिये गये सुझावों वर विधिवत् गौर करेंगे।

श्रीमान अध्यक्ष महोदय, आपने व्यापार, निवेश और वित्तीय एकीकरण का मुद्दा उठाया था। इस पर भारतीय रिज़र्व बैंक की हमारी राय यह है कि व्यापारिक एकीकरण के सुस्पष्ट लाभ होते हैं, पर हमारे विकास के चरण पर वित्तीय एकीकरण के लाभ व जोखिम दोनों होते हैं। पूँजी, विशेष रूप से निवेश-सूची की गति अधिक परिवर्तनशील होती है। वह आसानी से अपनी दिशा को उलटा कर सकता है और वैसी पूँजी के मामले में ''मूल के नियमों'' को लागू करना मुश्किल होता है। इसलिए पूँजीगत लेखे के अत्यधिक उदारीकरण की क्रमिक प्रक्रिया पर हमारा विश्वास है, यद्यपि गहन व्यापारिक एकीकरणवाली दुनिया में छोटे नियंत्रणों की बढ़ती प्रभावहीनता स्वीकृत होती है। इस प्रकार व्यापारिक निवेश व वित्तीय गतियाँ साथ साथ पर कुछ-कुछ सुसंगत व पूरे क्रमिक तौर पर चलती हैं, भले ही ये साथ-साथ नहीं चलती हों।

अंत में एसीयू और सार्क-वित्तीय समूह की बैठकों में हुए विचार-विमर्श कुल मिलाकर आपकी भावनाओं को प्रतिबिम्बित कर रहे थे। इनमें उभरती हुई वैश्विक वास्ताविकताओं को स्वीकार करते हुए अधिक सहयोग देने की माँग की गयी थी। गवर्नर सलेहुद्दीन अहमद बैठकों के मुख्य निष्कर्षों से संचार माध्यमों को अवगत करा चुके हैं। चूँकि मैंने ढाका में सार्क-वित्तीय समूह के अध्यक्ष का पद-भार ग्रहण किया था, इसलिए उक्त समूह की बैठक के विचार-विमर्शों की विशिष्टता बताना चाहता हूँ।

हमने देख लिया था कि हाल के वर्षों में दक्षिण एशियाई क्षेत्र अधिक गतिशील आर्थिक केंद्र के रूप में उभरता हुआ दिखाई देता है। इसका विकास प्रभावशाली है; तेल व खाद्यान्नों की ऊँची कीमतों के होते हुए भी मुद्रा-स्फीति संतुलित है और विदेशी क्षेत्र सक्षम हैं। विचार यह है कि दक्षिण एशिया की आर्थिक व्यवस्थाओं का भविष्य, इतिहास के किसी भी पूर्व समय से ज़्यादा उज्ज्वल दीखती हैं। दुनियाँ की अत्यधिक विकासशील अर्थ-व्यवस्थाओं में उनका स्थान होने की अन्तर्शक्ति है। साथ ही वे वैश्विक गरीबी को उल्लेखनीय रूप से कम करने में अपना सहयोग देती हैं। मेरा मानना है कि दक्षिण एशियाई नमूने की कुछ अंतर्निहित व अनूठी सामर्थ्य होती है। उत्साह-वृद्धि और बढ़ी हुई क्षमता का संचालन देशी उद्यमी-वर्ग द्वारा किया जाता है। वह निजी क्षेत्र है, व्यापार-संचालित है। तथापि सरकारी क्षेत्र प्रमुख होता है। वह विकेन्द्रित और नीचे से ऊपर की ओर जाता है। लोक-नीतियाँ, बैंकिंग प्रणाली, पूँजी बाज़ार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, निर्यात की मांग आदि से विकास संभव हुआ है, पर देशी उद्यमी वर्ग को देशी निवेश व उपभोग-

मांग से, उनके प्रयास व दबाव से बड़ी प्रेरणा मिल जाती है। इसलिए इस बात का सुखद भविष्य है कि दक्षिण एशिया का विकास अपने आप गति पकड़ेगा और पर्याप्त स्थिर होगा। इस कार्य में आपके वाणिज्य और औद्योगिक मंडल जैसे मंडलों को सुधारों व गरीबी निवारण की पहली पंक्ति में रहना होगा।

सामान्यतः दक्षिण एशिया और खासकर बंगला देश के लिए आप के विचारों के मेरे जवाब को इसी आशावादी स्वर में खतम करना चाहता हूँ। अब मैं भारतीय अर्थ-व्यवस्था के भविष्य को बताना चाहूँगा।

समष्टि आर्थिक-व्यवस्था का कार्य-निष्पादन: पुनरीक्षण :

1980-1981 से 25 वर्ष की अवधि में भारतीय अर्थ व्यवस्था की औसत विकास-दर करीबन 6.0 प्रतिशत रही है। यह पिछले तीन दशकों की विकास-दर से, जो मात्र 3.5 प्रतिशत था, अधिक उन्नत है। 2003-07 के गत चार सालों में भारतीय अर्थ-व्यवस्था उच्च-विकास स्थिति में, वार्षिक 8.6 प्रतिशत के औसत पर पहुँच गयी है। इस अवधि के दौरान खासकर औद्योगिक व सेवा क्षेत्रों की अस्थिरता में उल्लेखनीय कमी के साथ विकास की तीव्र गति रही है। अतीत में खाद्य या तेल में से किसी एक का आघात होने पर ही विकास की तीव्र कमी, भुगतान संतुलन की समस्याएँ और शायद वित्तीय भंग पैदा हुए होंगे।इस संदर्भ में देखने पर तेल तथा खाद्य आघातों के होते हुए भी समष्टि आर्थिक व्यवस्था का ऐसा तगड़ा कार्य निष्पादन भारतीय अर्थ व्यवस्था के लचीलेपन व स्थायित्व को ही दिखाता है। इस संदर्भ में इस पर ध्यान देना आवश्यक है भारत का विकास मुख्यतः देशी खपत से ही आगे बढ़ा है। इसने कुल मांग के औसतन दो-तिहाई भाग का अंशदान किया है। साथ ही निवेश व निर्यात की माँग भी गति पकड़ी हुई है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस अवधि में 95% से अधिक के निवेश का वित्त-पोषण आंतरिक बचत से ही संभव हो पाया है।

इन सब के सम्मिलित प्रभाव ने प्रति व्यक्ति जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) विकास में तीव्र बढ़ोत्तरी को प्रोत्साहित किया है। उदाहरणार्थ, 1970 के दौरान भारत में प्रति व्यक्ति आय 0.6 प्रतिशत ही बढ़ी थी। इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि शायद कोई भी व्यक्ति अपने जीवन काल में एक बार भी अपनी आय को दुगुना होते हुए देख नहीं सकेगा। 1990 से औसतन 4.0 प्रतिशत की दर से प्रति व्यक्ति आय बढ़ती रहती है। जिस का अर्थ यह है कि करीब 18 साल की अवधि में किसी भी व्यक्ति की आय दुगुनी हो जाएगी। इस प्रकार 72 वर्ष के संभाव्य जीवन काल के वयस्क जीवन में कोई भी अपनी आय को कम से कम तीन बार दुगुना होता देख सकता है। यदि वर्तमान 9 प्रतिशत की जीडीपी विकास दर बनी रहती है तो कोई भी अपने जीवन-काल में अपने जीवन-स्तर में करीबन पाँच गुना वृद्धि होते हुए देखने की आशा कर सकता है।

उत्पादकता के कुल घटकों में और पूँजी के उपयोग की क्षमता में अविरत सुधार के संकेत मिलते हैं। इस प्रकार जब वर्तमान में विकास की प्रगति के आवर्ती तत्व पाये जाते हैं, तब ऐसा विश्वास भी बढ़ता जा रहा है कि विकास का गतिवर्धन चालू है।

वाणिज्य बैंकों द्वारा दिये गए खाद्येतर ऋण की ऊर्ध्व गति और बढ़ती हुई मात्रा यह दिखाती है कि वास्तविक क्षेत्र के विकास में प्रगति हुई है। 2003-07 की अवधि में खाद्येतर ऋण में 29.8 प्रतिशत का जो विस्तार हुआ है, उसका कोई पूर्वोदाहरण भारतीय आर्थिक-व्यवस्था के इतिहास में नहीं मिलता। बैंक ऋण की बढ़ोतरी ने खपत व निवेश की माँग में हुई उछाल की सहायता की

है। उसने अर्थ व्यवस्था में अत्यधिक ऋण का प्रसार किया है। साथ ही, बैंक ऋण का त्वरित विकास पिछले किसी भी समय से अधिक समाज के सभी वर्गों में फैल गया है। खासकर, बैंक ऋण के विकास ने कृषि, खुदरा उधार, विशेष रूप से आवास कार्य को, अर्थात् परिवारों के लिए उपयोगी क्षेत्रों में, मदद पहुँचायी है। ये क्षेत्र अब तक ऋण-बाज़ार के बाहर थे।

यह ध्यान देने योग्य है कि पिछले चार सालों का उच्चतर विकास मुद्रा स्फ़ीति के मन्दन के साथ साथ हुआ है। थोक मूल्य सूचकांक के अनुसार, शीर्ष मुद्रा स्फ़ीति-दर 1990-95 के 11 प्रतिशत के औसत से घटकर 1995-2000 में 5.3 प्रतिशत तथा 2003-07 के दौरान 4.9 प्रतिशत हो गयी है। मुद्रा-स्फीति की घटती प्रवृत्ति के साथ साथ मुद्रा-स्फीति की अस्थिरता में भी उल्लेखनीय कमी हुई है। यह अच्छी तरह दृढ़तर बनायी गयी मुद्रा-स्फीति की आशाओं को दर्शाता है। देशी व विदेशी क्षेत्रों में प्रतिकूल आघातों के आ जाने पर भी यह स्थिति पायी जाती है।

इस संदर्भ में मैं विश्व बैंक के श्री सादिक अहमद की हाल की लिखित 'भारत के दीर्घकालीन विकास से अनुभूत तथ्य' नामक रचना से उद्धृत करता हूँ। यह किताब भारतीय विकास से अनुभूत तथ्यों को दो चरणों में याने 1950 से 1980 को पहले चरण व 1980 से अब तक को दूसरे चरण के रूप में विश्लेषित किया है।

''कुल मिलाकर, दोनों चरणों में भारत की स्फीति दर को विश्व की दर और तेल-निर्यात न करनेवाले विकासशील देशों की दर से कम रखने की क्षमता, मुद्रा नीति के ठोस प्रबंध का प्रमाण होता है। यह विशेष रूप से उत्साहवर्धक इसलिए है कि दूसरे चरण के दौरान भारत ने कई विदेशी आघातों व उससे उत्पन्न प्रतिकूल प्रभावों का सामना किया, क्योंकि तब उसने अर्थव्यवस्था को उदार रखा था, जब कि पहले चरण में अर्थव्यवस्था का सीमित परिवेश था।''

हाल के वर्षों में सरकारी वित्तों की स्थिति में हुए अच्छा-खासा सुधार विकास की सकारात्मक विशेषता रही है। 2003-07 के दौरान पिछले सालों की ऊँची दर से कम होकर राजस्व घाटा (आरडी), सकल राजकोषीय घाटा (जीएफ़डी) और प्राथमिक घाटा (पीडी) कम होकर क्रमशः2.7, 4.1 व 0.1 प्रतिशत रहा है। जीडीपी के प्रति कर के अनुपात में भी निरन्तर उछाल होने के आसार दीखते हैं। यह लोक-वित्त के बलवती दौर की शुरूआत की ओर संकेत करता है। 2003-04 के सरकारी क्षेत्र के अधिव्यय के स्थिति-परिवर्तन, राजकोष में सुधार को प्रकट करता है। पिछले कुछ वर्षों के आवर्ती कारकों को हिसाब में लेने के बाद भी केन्द्र व राज्यों की राजकोषीय स्थिति में सुधार हुआ है। भारत की मुद्रा- नीति को लम्बे समय से जिस राजकोषीय प्रभुत्व का मुकाबला करना पड़ता था, इस सुधार ने उसके भार को बहुत कुछ हलका किया है।

समष्टिगत आर्थिक निष्पादन में हुए प्रभावशाली लाभ शायद भारत के विदेशी क्षेत्र से प्रकट होता है। इस क्षेत्र ने तीव्र स्पर्धात्मक, सार्वभौमिक और ज़रा-सा अनिश्चित अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में गतिशीलता व लचीलापन दर्शाया है। गत चार सालों से करीबन 25 प्रतिशत की औसत-दर से व्यापारिक मालों का निर्यात बढ़ता रहता है। विश्व के बाज़ार में उसका हिस्सा नियमित रूप से बढ़ रहा है। यह भारतीय उद्योग की प्रतियोगी प्रवृत्ति को प्रकट करता है। इसी समय में साफ़्टवेयर व व्यापारिक सेवाओं का निर्यात काफ़ी बढ़ गया है। ज्ञान पर आधारित देशी सेवा-क्षेत्रों और उनकी प्रतियोगी श्रेष्ठता का यह सूचक है। विश्व की अर्थ-व्यवस्था में अधिक एकीकृत हो जाने से भारतीय कंपनियों को उच्च गुणवत्तावाले

आयातों को पाने और अपनी विदेशी आस्तियों की गतिशीलता को बढ़ाने में सहायता मिली है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था के कार्य-निष्पादन पर अंतर्राष्ट्रीय विश्वास पक्का हो गया है। सभी अंतर्राष्ट्रीय रेटिंग एजेन्सियों द्वारा भारतीय निवेश का ग्रेड बढ़ाकर निवेश ग्रेड कर दिये जाने से यह बात प्रकट होती है। पूँजी व चालू लेखाओं को उल्लेखनीय रूप से मज़बूत किये जाने के बाद, विदेशी मुद्रा की प्रारक्षित निधियाँ दुगुनी हो गयी हैं यानी जो मार्च 2003 के अंत में 76 बिलियन अमरीकी डालर की थीं, वे मार्च 2007 के अंत में 200 बिलियन अमरीकी डालर हो गयी हैं। विदेशी मुद्रा की ये प्रारक्षित निधियाँ दुनियाँ की छठी सबसे बड़ी निधि होती है व वे एक पूरे वर्ष के आयातों से बहुत अधिक और विदेशी ऋणों से भी ज्यादा होती हैं।

वित्तीय क्षेत्र का सिंहावलोकन

वित्तीय संस्थाओं को मज़बूत करना और बहुरूपिया वित्तीय बाज़ार के विभिन्न खंडों को विकसित करना वित्तीय क्षेत्र सुधार का महत्व रहा। सुधारों का केंद्र-बिंदु यह भी रहा कि वित्तीय बाज़ार के एकीकरण को बढ़ाएँ ताकि वित्तीय मध्यवर्तियों के परिचालनों में आवश्यक लचीलापन हो। भारतीय बैंकों के तुलन-पत्र काफ़ी मज़बूत हो गए हैं, वित्तीय बाज़ार तीव्र व विस्तृत हो गए हैं और वास्तविक समय सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस) के लागू होने पर, भुगतान प्रणाली भी तगड़ी हो गयी है। साथ ही अभी कुछ समय से रिज़र्व बैंक का प्रयास अधिक वित्तीय समावेशन करना और आम व्यक्ति तक पहुँचना रहा है।

बैंकिंग क्षेत्र की आस्तियों के प्रकार में उल्लेखनीय प्रगति हुई, जो वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की प्रभावोत्पादकता दर्शाती है। वर्तमान में सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंकों ने 9.0 प्रतिशत की न्यूनतम पूँजी पर्याप्तता अनुपात का पालन किया है। अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के पूर्व की अनुपयोज्य आस्तियाँ, 2002-03 के 8.80 प्रतिशत अग्रिमों से घटकर 2005-06 में 3.30 प्रतिशत हो गयी हैं। कुल आस्तियों के अनुपात के रूप में परिचालन व्यय, 2002-03 के 2.24 प्रतिशत से घटकर 2005-06 में 2.11 प्रतिशत हो गया है। इस प्रकार, सही पृष्ठभूमि के होने पर, अनुसूचित वाणिज्य बैंक अपने कार्य-निष्पादन के संकेतकों के अनुसार स्थिरता, व्यापन और प्रौद्योगिक प्रगति में अच्छा कार्य कर सके हैं। उस प्रक्रिया से सरकारी क्षेत्र के बैंकों की कार्य कुशलता में भी प्रभावोत्पादक वृद्धि हुई है। वे वित्तीय समावेश में लाभकारी भूमिका अदा कर रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जनसंख्या के सभी खंडों में बैंकिंग सेवाओं को अधिक फैलाने और प्रणाली की कार्यकुशलता व लोच को बढ़ाने की अनिवार्य आवश्यकता है।

यद्यपि बड़ी वाणिज्य बैंकिंग प्रणाली को दी गयी स्थिरता और कार्य-कुशलता को सर्वत्र माना गया है, फिर भी कतिपय ऐसे खंड होते हैं, जहाँ पुनर्विन्यास भी आवश्यक होता है। इस दशक के प्रारंभ में शहरी सहकारी बैंकों को हुए अनुभव से कड़े विवेकपूर्ण मानदंडों को लागू करना पड़ा। वर्तमान में इस क्षेत्र में जो बहुविध नियंत्रण होते हैं, उस विषय पर ध्यान दिया गया है। उनके स्वस्थ-विकास का उद्देश्य-दस्तावेज बनाया गया है। बड़े पैमाने पर पुनर्विन्यास शुरू हो गया है और अब भी चालू है। वैसे ही, ग्रामीण सहकारी बैंकों के ढाँचों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों और विकास वित्तीय संस्थानों पर सक्रिय रूप से विचार किया गया है और व्यापक उपाय किये गये हैं, जिन में से कुछ कार्यान्वित हो रहे हैं।

अल्पावधि संभावना

रिज़र्व बैंक ने 2007-08 के वार्षिक नीति वक्तव्य में वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की विकास-दर को नीतिगत प्रयोजनों के लिए 2007-08 के दौरान 8.5 प्रतिशत के आसपास रखा। कृषि-विकास की प्रवृत्ति, दीर्घ-कालीन औसत वर्षा की भविष्यवाणी, औद्योगिक व सेवा-क्षेत्रों के विकास की प्रेरणाओं की प्रतीक्षा तथा 2007 में वैश्विक जीडीपी विकास के 50 आधार बिन्दुओं की गिरावट आदि को ध्यान में रखते हुए एवं अंतराष्ट्रीय तेल की कीमतों में और वृद्धि न होने व घरेलू या बाह्य क्षेत्रों के धक्कों को छोड़कर यह अनुमान किया गया।

लगातार विदेशी पूँजी के आगमन और तेल की कीमतों के बढ़ने के बावजूद कुल मिलाकर 1990 के दशक के उत्तरार्ध से मुद्रा-स्फीति की दरें सौम्य रहीं। 2007-08 में मुद्रा-स्फीति को 5.0 प्रतिशत के निकट नियंत्रित रखना रिज़र्व बैंक का नीतिगत प्रयास होगा। मुद्रा-स्फीति पर स्वयं लगायी गयी मध्यावधि उच्चतम सीमा के हितकारी प्रभाव को देखते हुए और परिणामस्वरूप मुद्रा-स्फीति की दर में सामाजिक रूप से संतोषजनक गिरावट होने एवं विश्व की अर्थव्यवस्था से भारत के उभरनेवाले एकीकरण से 2007-08 का वार्षिक नीतिगत वक्तव्य में उक्त नीति व अनुभव को अनुकूलित कर 4.0 से 4.5 प्रतिशत के बीच मुद्रा-स्फीति दर को नियंत्रित करने का संकल्प है। मध्यावधि में अपने आप बढ़नेवाली विकास की गति को बनाये रखने में यह लक्ष्य अनुकूल रहेगा।

भारत का बाह्य क्षेत्र चालू खाता घाटे को बहुत संतुलित स्तर पर बनाये रखने से लोचदार बन गया है। भुगतान संतुलन को व्यवस्थित रखने की भावना में हाल की प्रवृत्तियों के बने रहने की आशा की जाती है। विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा 2003-04 के 0.76 प्रतिशत से बढ़कर 1 प्रतिशत से अधिक हो गया है। यह अर्थ-व्यवस्था की बढ़ती प्रतिस्पर्धात्मक भावना को प्रकट करता है। कुल मिलाकर 2007-08 में समग्र व्यापार व चालू खाते के घाटों का पर्याप्त वित्तपोषण 2007-08 के पूँजी-आगमन से किये जाने की आशा की जाती है।

विश्व-भर में मुद्रा-आपूर्ति के उच्च-प्रसार और 2005-07 के मुद्रा-आधिक्य का ध्यान रखते हुए, यह आवश्यक है कि 2007-08 में संवृद्धि और मुद्रा-स्फीति के दृष्टिकोण के अनुरूप मुद्रा-प्रसार 17.0 से 17.5 प्रतिशत के आसपास नियंत्रित किया जाए। 2007-08 के वार्षिक-नीति वक्तव्य में भी 2007-08 में कुल जमा-संवृद्धि को करीब 4,900 बिलियन रुपए तक और खाद्येतर ऋण को 2004-07 की अवधि के 29.8 प्रतिशत के औसत से 2007-08 में क्रमिक रूप से 24.0 से 25.0 प्रतिशत तक कम करने का निश्चय किया गया।

राजकोषीय घाटा संकेतकों में की गयी लक्ष्यांक कमी के अनुरूप सरकारों, केन्द्र व राज्य सरकारों, की राजकोषीय स्थिति दृढ़ हो रही है। अनेक राज्यों की राजकोषीय स्थिति में सुधार हुआ है, जो विशेष रूप से प्रभावोत्पादक है। यह अर्थव्यवस्था की सतत वृद्धि और मुद्रा-स्फीति की कमी की पूर्व सूचना देता है। 2007-08 के संघीय बजट ने वर्ष 2007-08 के लिए के लिए राजकोषीय घाटे को पिछले वर्ष के 3.7 प्रतिशत के मुकाबले जीडीपी का 3.3 प्रतिशत रखा है, जो राजकोषीय दायित्व और बजट नियंत्रण (एफ़आरबीएम) अधिनियम, 2003 के अनुरूप है।

आगे का मार्ग : चुनौतियाँ और मज़बूतियाँ:

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए निश्चय ही कई चुनौतियाँ हैं; पर इनमें से अति तात्कालिक चुनौतियों को सुस्पष्ट करना उपयोगी होगा।

प्रथम है भौतिक बुनियादी ढांचा, जिसको कई लोग, उसकी मात्रा व गुणवत्ता दोनों में, भारत की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। विनियामक ढांचा और निवेश का समग्र वातावरण यहाँ के अत्वाश्यक विषय होते हैं। सरकार द्वारा इन पर ध्यान दिया जा रहा है।

कृषि के विकास संबंधी विषय दूसरा अत्यन्त जटिल और चुनौती भरा होता है। जब कृषि पर 60 प्रतिशत के अधिक कामगार निर्भर हैं, तब वह जीडीपी का मात्र 20 प्रतिशत हिस्सा होता है। इसके अतिरिक्त, कृषि से उत्पन्न जीडीपी की वृद्धि, जनसंख्या की वृद्धि से सीमान्त रूप से ही अधिक होता है। यह त्वरित गरीबी निवारण को सुनिश्चित करने के लिए काफ़ी नहीं है। भारत में गरीबी संबंधी हाल ही के सर्वेक्षणों का परिणाम सुधार काल से लेकर पूर्ण गरीबी की त्वरित कमी की दिशा में आशावादी होते हैं।

हमारी जनसंख्या के बड़े भाग को शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी लोक-सेवाओं का वितरण तीसरी मुख्य चुनौती होती है। यह अच्छी तरह महसूस किया जाता है कि शिक्षा प्राप्त करने से गरीब लोग विकास कार्य के भागीदार बनेंगे। गरीबों की बहुत कम पहुँच होने के कारण स्वास्थ्य देखभाल की बड़ी खाइयों को भरना होगा।

भारतीय समाज की कई आंतरिक शक्तियों के कारण ऐसा विश्वास करने के कारण होते हैं कि उक्त चुनौतियों का सामना सफलता के आश्वासन के साथ किया जाएगा। मैं इनमें से इस सभा के लिए संगत कुछ बातों को बताऊँगा।

पहला यह है कि भारत बड़ी विविधताओंवाला देश है; पर यहाँ विभिन्न धर्मों, भाषाओं के अविश्वसनीय, शान्तिमय सह-अस्तिव व एकीकृत संस्कृति पायी जाती है। भारत की अनेक भाषाओं का सुपरिचय लोगों को बहुभाषीय परिवेश के बेहतर अनुकूलनीय बनाता है। यह उन्हें बहुत आसानी से अंतराष्ट्रीय प्रणाली के योग्य बनाता है। साथ ही, विज्ञान व तकनीकी के स्नातकों का विस्तृत व बढ़ता समूह और अंग्रेज़ी भाषा के जानकार कई मिलियन लोग उभरते हुए भारत के बल के साधन होते हैं।

दूसरी बात यह है कि आगामी कुछ दशकों में दुनियाँ के सबसे तरुण देशों में से भारत एक होगा। यह 'जनसांख्यिकीय लाभांश' अनिवार्य सुविधा होगी, बशर्ते कि कुशलता उन्नयन और स्वस्थ शासन जैसी पूर्व अपेक्षाओं को लागू कर उसका लाभ उठाया जाए। अधिक महत्ववाली बात यह है कि ऐसा जनसंख्यात्मक परिवर्तन लंबे समय तक बना रहेगा, क्योंकि केरल से उत्तर प्रदेश तक भारत के विभिन्न राज्य इस परिवर्तन के अलग-अलग दौर से गुज़र रहे हैं।

तीसरा है भारत में पायी जानेवाली फलती-फूलती व्यावसायिक संस्कृति। व्यावसायिक परिवेश के रूप में, अर्थव्यवस्था के बाज़ार अनुकूलन के साथ-साथ, यह प्रभावशाली विकास नीचे से ऊपर तक फैलनेवाला अभ्यास है जिसके साथ व्यापक व विकासरत उद्यमकर्ताओं का समूह है। ये प्रवृत्तियाँ विकासरत भारतीय उद्यमकर्ताओं के समूह के अभिनव-परिवर्तन के प्रति झुकाव को दर्शाती हैं। यह व्यावसायिकता से ओतप्रोत व वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार समूह है। मित्रो! बंगला देश के वाणिज्य मंडलों के लिए भारत की व्यापार संस्कृति का यह क्षेत्र अधिक लाभ का होगा। देशों के बीच व्यावसायिक संपर्क हमेशा लगभग जीत ही जीत की स्थिति होते हैं क्योंकि अगर ऐसा नहीं समझा गया हो तो कोई भी व्यावसायिक लेन देन संभव नहीं होता। रिज़र्व बैंक जैसे संस्थान इन व्यावसायिक संपर्कों को सफल व समृद्ध होने - चाहे वह व्यापार या निवेश का हो - के योग्य सहर्ष बनाएगा।

समाप्त करने से पहले मैं आप को यह बताना चाहता हूँ कि अच्छी व्यावसायिक संस्कृति को कैसे उतनी अच्छी नहीं होनेवाली व्यावसायिक संस्कृति से अलग कर देखा

जाए। जब दो व्यक्ति व्यावसायिक साझेदारों के रूप में रेल या बस या हवाई जहाज की यात्रा शुरू कर अजनबियों जैसे उसे पूरा करें तो वह उतनी अच्छी संस्कृति नहीं है। पर जब दो व्यक्ति अपनी यात्रा के शुरू में अजनबी होकर अंत में व्यावसायिक साझेदार हो जाएँ तो वह अच्छी व्यावसायिक संस्कृति है। आपसे मेरा आग्रह यह है कि भारत और बंगला देश के बीच गहन व्यावसायिक संपर्क, संवाद और साझेदारी हों और तब तक हों जब तक कि ये दोनों देशों के व्यवसायों एवं उनके निवासियों के लिए लाभकर हों। भारतीय रिज़र्व बैंक जैसे सरकारी संस्थान उत्पादकारी व्यावसायिक संस्कृति के विकास में सहायक नीतिगत परिवेश का विश्वास दिलाते हैं ताकि हम दोनों देशों के लाखों युवकों को रोज़गार प्रदान करने में वह परिवेश सहायक हो।